

श्रीअरविन्द कर्मधारा



सितम्बर-अक्टूबर, 2020

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा

वर्ष 50 अंक-5

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र
अक्टूबर-2020

(अंक-5)

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाष: 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriarobindoashram.net)



जीवन पथ

जीवन पथ पर सब प्रकार के भय, संकट और विनाश से बचकर आगे बढ़ते चलने के लिए दो ही चीजें जरूरी हैं और ये दोनों ऐसी हैं जो सदा एकसाथ रहती हैं- एक है माँ भगवती की करुणा और दूसरी, तुम्हारी ओर से ऐसा अन्तःकरण जो श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण से गठित हो। श्रद्धा तुम्हारी होनी चाहिए विशुद्ध, निश्छल और निर्दोष तुम्हें ध्यान रखना चाहिए कि मन और प्राण की ऐसी अहंकार युक्त श्रद्धा जो बड़े बनने की आकांक्षा, अभिमान, दम्भ, अहंमन्यता, प्राण की स्वैरता, वैयक्तिक अभिलाषा और निम्न प्रकृति की क्षुद्र वासना तृप्ति से कलंकित है, ऊर्ध्वगमनाक्षम धूमाच्छन्न अग्निशिखा के समान है जो ऊपर, स्वर्ग की ओर प्रज्वलित नहीं हो सकती।

- श्रीअरविन्द



प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ

मेरा मन तुझसे ओतप्रोत है, मेरा हृदय और मेरी समस्त सत्ता तेरी उपस्थिति से परिपूर्ण है, शान्ति अधिकाधिक बढ़ रही है और वह ऐसी विशिष्ट और अमिश्रित प्रसन्नता, एक स्थिर प्रशान्ति की प्रसन्नता उत्पन्न कर रही है जो विश्व के समान विशाल तथा उन अथाह गहराइयों के समान गम्भीर प्रतीत होती है जो तेरी ओर ले जाती है।

ओह! ये नीरव और पवित् रातियाँ! जब कि मेरा उमड़ता हुआ हृदय तेरे दिव्य प्रेम के साथ संयुक्त हो जाता है, समस्त वस्तुओं में पैठने के लिए समस्त जीवन का आलिंगन करने के लिए, समस्त विचार को आलोकित और पुनः जागृत करने के लिए, समस्त भावना को शुद्ध करने के लिए, समस्त प्राणियों में तेरी अद्भुत उपस्थित को और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली अवर्णनीय चेतना को जगाने के लिए दिव्य प्रेम के साथ एक हो जाता है।

हे प्रभु, ऐसी कृपा कर कि यह चेतना और यह शान्ति दिन-प्रतिदिन हमारे अन्दर बढ़ती चली जाए जिससे कि हम तेरे दिव्य और अद्वितीय विधान के सच्चे माध्यम बन सकें।

विषय-सूची

क्र.सं.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1	संपादकीय	अपर्णा राँय	5
2	पर्वतों पर	विमला गुप्ता	7
3	श्रीअरविन्द का पूर्णयोग	निवारण चन्द्र	8
4	तुम्हारा कर्म	श्रीमाँ	10
5	ईश्वर की अराधना	संकलन	11
6	साविली-एक संक्षिप्त परिचय	मंगेश नाडकर्णी	12
7	स्वर्णिम प्रकाश	श्रीअरविन्द	19
8	पूर्णयोग का पथिक	अपर्णा राँय	20
9	आश्रम गतिविधियाँ		23

संपादकीय

अपर्णा रॉय

एक सन्यासी था। उसने अभी नया-नया ही संन्यास ग्रहण किया था। वह ईश्वर को पाना चाहता था मगर उसमें धीरज की कमी थी। उसे दैनिक क्रिया-कलाप अपने लक्ष्य के मार्ग में बाधा महसूस होते थे। वह मन-ही मन सोचता, यदि उसे कुछ ना करना पड़े तो वह केवल ईश्वर की अराधना कर सकता है। उन्हें जल्दी पा सकता है। किन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता, उसका काफी समय जीवन की जरूरतों को पूरा करने में बीत जाता था।

एक दिन वह कुछ सोचता हुआ चला जा रहा था। रास्ते में एक जंगल पड़ा। जंगल में उसने देखा, पेड़ के नीचे एक लोमड़ी असहाय सी पड़ी है। उसने देखा लोमड़ी के पैर नहीं हैं, वह धरती पर जाने कब से पड़ी थी। संन्यासी का मन दया और चिन्ता से भर उठा। वह सोचने लगा, इस घने जंगल में यह बेचारी कितनी असहाय है, चल फिर भी नहीं सकती। इसे भोजन कहाँ से मिलेगा? यह तो यूँ ही मर जाएगी, कौन इसकी रक्षा करेगा! हे ईश्वर! अभी वह यह सोच ही रहा था कि उसे एक गर्जना सुनाई दी, वह सिंहर उठा। उसने देखा, तेजी से एक शेर दौड़ता चला आ रहा था। संन्यासी भय से काँप उठा। प्राणों के भय से दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गया। अब वह सुरक्षित था। उसने नीचे देखा, सोचा, आज तो यह लोमड़ी गई। शेर पास आता जा रहा था, पत्तों में छिपा संन्यासी चुपचाप देखता रहा, शेर और पास आया और धीरे-धीरे लोमड़ी की तरफ बढ़ने लगा। डर के मारे संन्यासी ने आँखें मूँद लीं, मगर हथेलियों के किनारे से देखता रहा...।

यह क्या, आश्चर्य! उसने देखा, शेर के मुँह में मरा हुआ खरगोश था जिसे उसने धीरे से लोमड़ी के पास रख दिया और आगे चला गया। संन्यासी की आँखें फटी की फटी रह गयीं। उसने दोनों हाथ ऊपर उठा दिये, बोला, हे ईश्वर! तू कितना दयालु है। मन ही मन सोचा, मैं यूँ ही परेशान होता हूँ, वह है ना सब का ध्यान रखने के लिए। वह पेड़ से उतर गया और सीधा घने जंगल में जाकर ध्यान में बैठ गया। अब मेरा ख्याल भी ईश्वर ही रखेगा, मुझे कुछ करने की जरूरत नहीं। संन्यासी ने आँखें मूँद लीं। घना जंगल था, पास में कल-कल करती नदी बह रही थी।

एक दिन बीत गया, ध्यान टूटा, संन्यासी को भूख लगी थी। उसे विश्वास था कि ईश्वर उसके लिए भोजन जरूर भेजेगा पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। दूसरा दिन आया मगर भोजन नहीं मिला। भूख और प्यास से संन्यासी का हाल बुरा था। अब उसका विश्वास हिलने लगा फिर भी वह इन्तजार करता रहा।

‘भूखे भजन न होए गोपाला’-सन्यासी ध्यान क्या करता? धीरे-धीरे वह शक्तिहीन होता जा रहा था। लगता था प्राण ही निकल जाएँगे। सोचता, ईश्वर इतने निष्ठुर कैसे हो गये! चार-पाँच दिन हो गये। वह भूखा-प्यासा अचेत सा पड़ा रहा। संयोग से एक महात्मा वहाँ से गुजर रहे थे, उन्होंने अचेत संन्यासी को देखा तो नदी से पानी लाकर उसके मुँह पर छींटा मारा, संन्यासी को कुछ होश आया। महात्मा ने उसे कुछ खिलाकर पानी पिलाया तो उसकी जान में जान आयी। महात्मा ने पूछा उसकी यह हालत कैसे हुई? संन्यासी ने रोते हुए उन्हें सारी कथा सुनाई और कहा, मुझे नहीं पता था कि ईश्वर इतने पक्षपाती होंगे। मैंने सोचा था कि जैसे उन्होंने असहाय लोमड़ी की सहायता की थी, वे सब की करते होंगे, मगर देखो, उन्होंने मुझ पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। यदि आप ना आते तो मैं तो मर ही जाता, ऐसे भगवान का मैं

क्या भरोसा करूँ? महात्मा मुस्कराए, यदि भगवान तुम्हारा ध्यान न करते तो भला मैं इस जंगल में क्यों आता, तुमने यह क्यों नहीं सोचा कि भगवान तुम्हें लोमड़ी की तरह असहाय नहीं बल्कि शेर की भाँति ताकतवर, सक्षम और उदार बनाना चाहते हैं जो लोमड़ी की भाँति असहाय लोगों की सहायता करे।

साथियों! श्रीमाँ भी हमारे जीवन को कुछ इसी प्रकार उच्चतर बनाना चाहती हैं। जीवन के किसी कार्य या दायित्व से पलायन नहीं बल्कि उसे प्रभु का कार्य मान कर प्रभु को समर्पित करते हुए करने की मनोवृत्ति को बनाए रखने का सतत प्रयास चेतना के उत्कर्ष में सहायक होता है जो हमें योगपथ पर अग्रसर करता है।

योग के द्वारा हम असत्य से सत्य में, निर्बलता से शक्ति में, दुख और क्लेश से परम आनन्द में, बंधन से मुक्ति में, मृत्यु से अमरत्व में, अंधकार से प्रकाश में, सम्मिश्रण से शुद्धता में, अपूर्णता से पूर्णता में, आत्माविभाजन से एकत्व में, माया से ईश्वर में आरोहण कर सकते हैं। केवल वही योग पूर्ण है जिसका लक्ष्य भगवान की पूर्णता को प्राप्त करना हो, भागवत परिपूर्णता का साधक ही पूर्णयोगी है।

हमारा उद्देश्य होना चाहिए पूर्णता को पाना, जैसे कि भगवान अपनी सत्ता और आनन्द में पूर्ण हैं, पवित्र होना, जैसे वे पवित्र हैं; आनंदमय होना, जैसे कि वे आनंदमय हैं, और जब हम स्वयं पूर्णयोग में 'सिद्ध' हो जाएँ, तब सारी मानवजाति को उसी भागवत परिपूर्णता तक ले आना। इससे कोई हानि नहीं यदि अभी हम अपने उद्देश्य के उपयुक्त न भी हों, बशर्ते कि हम अपने आपको पूरे दिल से इस प्रयत्न में लगा दें और निरंतर उसी प्रयत्न में लगे रहकर और उसी के लिये जीवित रहकर, अपने मार्ग में इंच-दो इंच आगे बढ़ते रहें। यही मानवजाति को उस संघर्ष और अंध-प्रकाश में से जिसमें कि अभी वह निवास कर रही है, बाहर निकालकर उस ज्योतिर्मय आनन्द में ले जाने में सहायक होगा जो भगवान के द्वारा हमारे लिए अभिप्रेत है, किन्तु हमारी तात्कालिक सफलता चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा अटल उद्देश्य होना चाहिए समूची यात्रा पूरी करना, न कि मार्ग के बीच किसी पड़ाव या किसी विश्रामस्थल में संतोषपूर्वक पड़े रहना। वह सारा योग जो हमें जगत से दूर ले जाता है, दिव्य तपस्या का उच्च किन्तु संकुचित रूप है। अपने पूर्णत्व में भगवान सब वस्तुओं का आलिंगन करते हैं; हममें भी सब वस्तुओं का आलिंगन करने की क्षमता होनी चाहिए। जहाँ तक जगत का सम्बन्ध है, उस दृष्टि से भगवान वह सत्ता है जो विश्व को अपने अन्दर धारण करती और उसकी रक्षा करती है तथा जो स्वयं विश्व बनती है। स्वयं भगवान ही यह विश्व हैं और वे स्वयं ही विश्व के भीतर और विश्व के रूप में क्रीड़ा करने वाले सर्वातीत और सर्वोच्च पुरुष भी हैं। विश्व में वह उसके आत्मा और प्रभु के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। विश्व रूप में वह प्रभु के संकल्प की गति या प्रक्रिया के रूप में और उस गति के सारे आंतर और ब्रह्म परिणामों का रूप धारण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। हमारा लक्ष्य भगवान के उन स्वरूपों का साक्षात्कार करना और उनके साथ तद् रूप हो जाना है, तदर्थ जीवन के किसी रूप का त्याग करना नहीं बल्कि सब में उनके प्रति समर्पण भाव रखते हुए जीवन के समस्त कार्यों एवं परिस्थितियों में भगवान के आदेश और उद्देश्य को स्वीकार करना चाहिए। इसी मनोभाव का सजगता के साथ पालन करते हुए मन-प्राण और शरीर को पलायनवादी तमस से बचाते हुए, भागवत-चेतना के प्रति और ग्रहणशील बनें, इसी प्रार्थना के साथ पत्रिका का अंक प्रस्तुत है-

शुभेच्छाएँ -
अपर्णा

पर्वतों पर (श्रीअरविन्द)

अनु.-विमला गुप्ता

खामोशी एवं विषाद के सघन प्रत्यावर्त्तन,
एक अनुर्वर भव्यता की पहाड़ियाँ, चट्टानें उत्कृष्ट
जो निस्तब्धता में ढूँढती हैं नीलगगन के अनन्त कक्ष
अपनी समतुल्य बर्फ सहित 'समय' द्वारा अस्पर्श!
मैं खोजता हूँ तुम्हारे पवित्र स्थल! मुझे अन्ततः
भूल जाने दो विचार को, अविस्मरणीय दिवसों तक
मूक एवं अनावश्यक संजोए रखूँ तुम्हारे वृहद शरण-स्थल,
विकसित होते हुए शान्ति में जिसमें मैं करता हूँ निवास।
क्योंकि उस अनिर्मित अन्तरात्मा की भाँति तुम चिन्तन करते होते हो प्रतीत
अवलोकन करती हुई युगों का उस 'परम' के एकान्त से,
अप्रत्यक्ष, असंबद्ध, एकाकी। तुम सभी भाग्यों को
प्रदान करते हो एक अविचलित हृदय और इसीलिए हो अचल,
जो ढूँढते नहीं, कर्मशील नहीं, नहीं करते संघर्ष ना विद्रोह।
तुम्हारे समान, विकसित होने हेतु 'उसकी' तरह विराट,
पवित्र, निर्माणहीन, शान्त एवं अविचलित।

महानिशा का तीर्थयात्री से

श्रीअरविन्द का पूर्णयोग

निवारण चन्द्र



सर्वप्रथम ज्ञान योग के इस पथ पर यह जान लेना अति आवश्यक है कि जो दिखाई देता है वह सत्य नहीं है, आत्मा शरीर नहीं है, न ही मन है और न ही जीवन है क्योंकि ये तो आत्मा के स्वरूप हैं। इसलिए मन को इस अवस्था में ले आना आवश्यक है कि उसका व्यावहारिक सम्बन्ध मन और शरीर से क्या है ताकि वह अपनी आत्मा के साथ सच्चा सम्बन्ध स्थापित कर सके।

अगर हम प्रयत्न करें तो पता लगेगा कि मन के अन्दर एक ऐसी शक्ति है जो मन को शरीर से अलग रख सकती है, विचार रूप में ही नहीं बल्कि कर्म में भी। मन की इस अनासक्ति को शरीर के प्रति उदासीनता के भाव से शक्तिशाली बनाना होगा, हमें इसके सोने या जागने की, इसके कर्म और आराम की सुख और दुख की, अच्छे स्वास्थ्य या रोग ग्रस्त स्वास्थ्य की, बल या

थकान की, सुविधा और असुविधा की, खाने या पीने की चिन्ता नहीं करनी होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम शरीर को सही अवस्था में नहीं रखेंगे, हमें घोर तपस्या की खाई में नहीं गिरना और न ही शारीरिक ढांचे की अवहेलना करनी है बल्कि मन को शरीर की इन आसक्तियों से मुक्त रखना है। यह कल्पना भी नहीं करनी चाहिए कि मन की पवित्रता हमारे भोजन और पेय प्रदार्थों पर निर्भर करती है, हालांकि किसी विशेष अवस्था में हम उन पर अपनी आन्तरिक प्रगति के लिए प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह सोचना जारी रखना चाहिए कि प्रकृति के साथ सम्बन्ध होने के कारण भोजन हमारी एक आदत बन गई है।

वास्तव में अगर देखा जाए तो, मानसिक और प्राणिक शक्ति खोये बिना, हम भोजन की माला को, एक प्रतिकूल आदत द्वारा, बहुत कम कर सकते हैं। यही नहीं बल्कि इस प्रकार की आदत को विकसित करके हम मन और प्राण को अधिक बलशाली बना सकते हैं और शारीरिक वस्तुओं पर निर्भर रहने के लगाव को त्याग सकते हैं।

अतः धीरे-धीरे अनुशासित मन यह सीख लेगा कि शरीर के साथ पुरुष का सही भाव क्या होना चाहिए। सर्वप्रथम यह

सीख लेगा कि शरीर को थामने वाला मनोमय पुरुष है न कि स्वयं शरीर। यह सत्य हमारी पूर्ण सत्ता का एक स्वभाविक भाव बन जाएगा और हम यह अनुभव करने लगेंगे कि शरीर का ढांचा तो एक वस्त्र की तरह है जिसे हम पहनते हैं, एक यंत्र की तरह है जिसे हमने हाथ से पकड़ा हुआ है, हम जब चाहें तब उसे बदल सकते हैं।

जब हमें इस प्रकार के अनुभव होने लगें तो यह समझ लेना चाहिए कि मन शरीर के साथ सही सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। इस समय हमारा महत्वपूर्ण ध्येय यही है कि मन शरीर और उसकी वस्तुओं पर निर्भर रहना त्याग दें। शरीर के प्रति इस प्रकार के अनुभवों से मन यह जान जायेगा कि हमारी सत्ता की आन्तरिक गहराइयों में पुरुष निवास करता है।

वह हमारी समस्त गतिविधियों का दृष्टा है। वह समझ लेना कि विचार, संवेदनाओं के अनुभव, उसके अपने नहीं हैं बल्कि प्रकृति की प्रक्रिया मात्र हैं। इस अनासक्ति को इस सीमा तक ले जाया जा सकता है कि मन और शरीर के बीच विभाजन हो जाएगा और मन यह अवलोकन और अनुमान करने लगेगा कि भौतिक सत्ता के अनुभव जैसे भूख, प्यास, कष्ट, थकान और विषाद आदि किसी अन्य व्यक्ति के अनुभव हैं जिनको वह यह समझता था कि वे प्रक्रियाएँ स्वयं के अन्दर घट रही थीं। स्वयं पर विजय पाने के लिए यह विभाजन एक महान् साधन है। यह हमारी मानसिक सत्ता की शारीरिक दासता से आरंभिक मुक्ति है।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1997

हम एक ऐसी विशेष स्थिति में हैं जैसी पहले कभी नहीं आयी। हम उस बेला में उपस्थित हैं जब नया जगत जन्म ले रहा है, पर जो अभी बहुत छोटा है और दुर्बल भी-जो अभी पहचाना नहीं गया, अनुभव नहीं किया गया, पर यह मौजूद है और बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है तथा अपने परिणाम के बारे में सुनिश्चित है। लेकिन इस तक पहुँचने वाला पथ बिलकुल नया पथ है जिस पर अब तक कोई नहीं चला। यह आरम्भ है, एक विश्वव्यापी आरम्भ, एक बिलकुल अप्रत्याशित और अकल्पित अभियान।

कुछ लोगों को अभियान प्रिय होते हैं उन्हें मैं इस महान अभियान के लिए आमंत्रित करती हूँ।

श्रीमाँ

तुम्हारा कर्म

श्रीमाँ

मैं जितनी भी बार कहूँ कम है कि दूसरों की करनी से अपने-आपको परेशान न करो। दूसरों का मूल्य न आँकों, समालोचना न करो, तुलना न करो। यह तुम्हारा काम नहीं है। तुम्हें धरती पर एक निश्चित उद्देश्य के लिए भौतिक शरीर में भेजा गया है। वह उद्देश्य है इस शरीर को यथासम्भव अधिक से अधिक पूर्ण यंत्र बनाना। तुम्हें सभी क्षेत्रों में, मन, प्राण और शरीर में, अमुक परिमाण में पदार्थ या द्रव्य दिया गया है जो भगवान तुमसे जिस चीज की आशा करते हैं उसके साथ मेल खाता है, तुम्हारे जीवन की सब परिस्थितियाँ भी, भगवान् तुमसे जिस चीज की आशा करते हैं, उसके अनुकूल हैं। इसलिए यह न कहो कि मेरा जीवन भयंकर है, सारे संसार में मेरा जीवन ही सबसे ज्यादा भयंकर है क्योंकि हर एक का जीवन ऐसा है जो उसके पूर्ण विकास के अनुकूल है, हर एक को ऐसे अनुभव होते हैं जो उसके पूर्ण विकास के अनुकूल हैं, और हर एक के सामने ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो उसकी पूर्ण सिद्धि के अनुकूल हैं।

अगर तुम अपने-आपको ध्यान से देखो तो निश्चय ही देखोगे कि तुम्हें जिस गुण को सिद्ध करना है उसका ठीक उलटा तत्त्व तुम अपने अन्दर लिए फिरते हो, यहाँ मैं गुण शब्द उसके बहुत बड़े और ऊँचे-से ऊँचे अर्थ में ले रही हूँ। तुम्हारा एक विशेष उद्देश्य है, एक विशेष जीवन-लक्ष्य है, एक विशेष सिद्धि है जो पूरी तरह तुम्हारी अपनी है और उसे पूरा करने के लिए जितनी बाधाओं की जरूरत है वे सब तुम्हारे अन्दर मौजूद हैं। तुम हमेशा यही पाओगे कि तुम्हारे अन्दर प्रकाश और अन्धकार साथ-साथ चलते हैं, तुम्हारे अन्दर एक क्षमता है और उस क्षमता का प्रतिवाद भी है। लेकिन अगर तुम अपने अन्दर गहरा घना अन्धकार पाओ तो विश्वास रखो कि तुम्हारे अन्दर कहीं बड़ा प्रकाश भी है। यह तुम्हारा काम है कि एक को प्राप्त करने के लिए दूसरे का उपयोग करो।

यह न कहो कि मैं तो ऐसा ही हूँ, और तरह का नहीं हो सकता। क्योंकि यह ठीक नहीं है। तुम ऐसे ही ठीक इसीलिए हो क्योंकि तुम्हें इससे उलटा बनना है। सब कठिनाइयाँ ठीक इसीलिए हैं ताकि तुम उन्हें उस सत्य में बदलना सीखो जिसे वे छिपाये हुए हैं।

इसी तरह कहा जा सकता है कि अगर जगत जैसा हो गया है, तत्त्वतः ठीक इसका उलटा न होता तो कोई आशा न रहती। चूँकि गढ़ा इतना अन्धेरा है, इतना गहरा है, निश्चेतना इतनी पूर्ण है कि अगर यह इसके विपरीत पूर्ण चेतना की सम्भावना का चिह्न न होता तो, सारी चीज को त्याग देना ही उचित होता।

शंकर ने कहा, और दूसरों ने भी स्वर मिलाया, कि संसार रहने योग्य नहीं है, तुम्हें उसे माया मानकर यथासम्भव जल्दी छोड़ देना चाहिए, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसके विरुद्ध मैं तुमसे कहती हूँ कि चूँकि दुनियाँ बहुत बुरी है, बहुत अन्धेरी है, बहुत भद्दी, बहुत अचेतन है, इसमें दुःख-दर्द भरा है इसीलिए इसमें उसके परम सौन्दर्य, परम ज्योति, परम चेतना और परम आनन्द बनने की सम्भावना है।

ईश्वर की आराधना

कहानी

एक पादरी महाशय समुद्री जहाज से यात्रा कर रहे थे, रास्ते में एक रात तूफान आने से जहाज को एक द्वीप के पास लंगर डालना पड़ा। सुबह पता चला कि रात आये तूफान से जहाज में कुछ खराबी आ गयी है, जहाज को एक-दो दिन वहीं रोक कर उसकी मरम्मत करनी पड़ेगी।

पादरी महाशय ने सोचा, क्यों ना एक छोटी बोट से द्वीप पर चल कर घूमा जाये, अगर कोई मिल जाये तो उस तक प्रभु का संदेश पहुँचाया जाय और उसे प्रभु का मार्ग बता कर प्रभु से मिलाया जाये।

वह जहाज के कैप्टन से इजाज़त ले कर एक छोटी बोट से द्वीप पर गये, वहाँ इधर-उधर घूमते हुए तीन द्वीपवासियों से मिले। जो बरसों से उस सूने द्वीप पर रहते थे। पादरी महाशय उनके पास जा कर बातचीत करने लगे।

उन्होंने उनसे ईश्वर और उनकी आराधना पर चर्चा की, उनसे पूछा- क्या आप ईश्वर को मानते हैं? वे सब बोले- “हाँ..।” फिर पादरी ने पूछा- “आप ईश्वर की आराधना कैसे करते हैं?”

उन्होंने बताया- हम अपने दोनों हाथ ऊपर करके कहते हैं, “हे ईश्वर! हम आपके हैं, आपको याद करते हैं, आप भी हमें याद रखना।” पादरी महाशय ने कहा- “यह प्रार्थना तो ठीक नहीं है।”

एक ने कहा- “तो आप हमें सही प्रार्थना सिखा दीजिये।”

पादरी महाशय ने उन सभी लोगों को बाइबल पढ़ना, और प्रार्थना करना सिखाया। तब तक जहाज बन गया। पादरी अपने सफर पर आगे बढ़ गये...।

तीन दिन बाद पादरी ने जहाज के डेक पर टलहते हुए देखा कि वे तीनों द्वीपवासी जहाज के पीछे-पीछे पानी पर दौड़ते हुए आ रहे हैं। उन्होंने हैरान होकर जहाज रुकवाया, और उन्हें ऊपर चढ़वाया।

फिर उनसे इस तरह आने का कारण पूछा।

वे बोले, “फादर! आपने हमें जो प्रार्थना सिखाई थी, हम उसे अगले दिन ही भूल गये। इसीलिए आपके पास उसे दुबारा सीखने आये हैं, हमारी मदद कीजिये।”

पादरी ने कहा- “ठीक है, पर यह तो बताओ तुम लोग पानी पर कैसे दौड़ सके?”

उन्होंने कहा- “हम आपके पास जल्दी पहुँचना चाहते थे, सो हमने ईश्वर से विनती करके मदद माँगी और कहा- “हे ईश्वर! दौड़ तो हम लेंगे बस आप हमें गिरने मत देना। और बस दौड़ पडे।”

अब पादरी महाशय सोच में पड़ गये, उन्होंने कहा- “आप लोग और ईश्वर पर आपका विश्वास धन्य है। आपको अन्य किसी और प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है। आप पहले की तरह ही प्रार्थना करते रहें।”

ये कहानी बताती है, ईश्वर पर विश्वास, ईश्वर की आराधना प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण है ॥ संत कबीरदास ने कहा है..

“माला फेरत जुग गया, फिरा ना मन का फेर, कर का मन का डारि दे, मन का-मनका फेर ॥”

सावित्री एक सक्षिप्त परिचय

मंगेश नाडकर्णी

इस प्रसंग के साथ ही “सावित्री” महाकाव्य का पर्व तीन समाप्त हो जाता है। प्रथम तीन पर्व चौबीस सर्गों में समाहित हैं जिनमें से 22 सर्ग अश्वपति के योग को समर्पित हैं। पाश्चात्य महाकाव्यों की तरह यह आख्यान कथा के मध्य में आने वाली घटना से शुरु होता है। पर्व एक के प्रथम दो सर्ग उषा के आगमन के उस दिवस का वर्णन करते हैं, जिस दिन सत्यवान की मृत्यु पूर्व निर्धारित है। सर्ग तीन, चार और पाँच अश्वपति के योग की उस अवस्था को चित्रित करते हैं जिसे अश्वपति ने अपनी आध्यात्मिक सिद्धि के लिए अंगीकार किया है। पर्व दो का पाँचवाँ सर्ग इस महाकाव्य का सबसे लम्बा सर्ग है जिसमें चेतना के उन विभिन्न लोकों का वर्णन आया है जिन्हें अश्वपति ने अपनी तपः यात्रा के दौरान खोज लिया है। पर्व तीन का चौथा सर्ग अश्वपति के योग की वैश्विक सिद्धि और नूतन सृष्टि का विवरण देता है। दिव्यमाता के वरदान शब्द अश्वपति की अभिलाषा और अभीप्सा की पूर्ति करके “तथास्तु” की छाप लगा देते हैं। वह अश्वपति की वह महान अभीप्सा एवं अभिलाषा है जो उसने पृथ्वी पर जन्मी मानव-जाति के जीवन की परिपूर्णता के हेतु दिव्य माता से निवेदित की थी। पर्व चार, जिसमें चार सर्ग सम्मिलित हैं, सावित्री के जन्म और बचपन का विविध विवरण देते हैं। तत्पश्चात् सावित्री के युवती रूप के सौन्दर्य एवं गुणों का विवरण आता है। सावित्री कई कलाओं, हस्तकलाओं एवं अन्य तमाम विद्याओं में पारंगत हो चुकी है। उसके बाहरी व्यक्तित्व में उसकी आन्तरिक ज्योतिर्मय शक्ति उतनी ही परिलक्षित होती है जितना कि उसका शारीरिक सौन्दर्य एवं सौष्ठव। स्वाभाविक ही उसके पिता अश्वपति की दृष्टि उसे उम्र की उस देहरी पर पहुँची देख सर्तकता से निहारती है। एक दिन अश्वपति को एक अन्तर्वाणी सुनाई देती है जो उसे सावित्री के जन्म, जीवन, उसके ऊँचे प्रयोजन और लक्ष्य तथा महान व्रत का स्मरण कराती है। अतः अश्वपति सावित्री को बहार के जग-जीवन में घूमने भेजता है जहाँ प्रेम और नियति उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सावित्री अपनी खोज के लिए रवाना होती है।

यह प्रसंग हमें पर्व पाँच पर ले आता है जिसे श्री अरविन्द ने “प्रेम का पर्व” शीर्षक दिया है। मूल महाभारत कथा में इस पर्व के पहले तीन सर्गों में सावित्री सत्यवान की प्रथम भेंट का जो वर्णन आया है वह कविता की दृष्टि से बहुत मनोहर है कि कैसे वे एक-दूसरे को देखते ही पूर्व-निर्दिष्ट आत्मा-संगी के रूप में पहचान लेते हैं। यदि श्री अरविन्द ने इन्हीं तीन सर्गों को लिखा होता तो भी काव्य-कला की दृष्टि से श्रेष्ठता का एक अद्वितीय नमूना छोड़ गये होते। प्रेम की पवित्रता और स्निग्धता, का मानवी प्रेम के अनूठे आदर्श और प्रेम की परिपूर्णता की निर्मल गुणवत्ता के लिए ये तीनों सर्ग विश्व-साहित्य में अपना सानी नहीं रखते। “महाकाव्य वास्तव में प्रेम की अनूठी अभिव्यक्ति है। मैं यहाँ अपने को इन सर्गों के कुछ पद्यांश पढ़ने से रोक नहीं पा रहा हूँ आप इन पंक्तियों को सुनें जिनमें सावित्री सत्यवान के प्रथम साक्षात्कार का वर्णन आया है-

और सत्यवान ने अपनी आत्मा के द्वारों से बाहर झाँका

और अनुभव किया उसकी मधुर वाणी के सम्मोहन को

जिसने उसके यौवन के नील-लोहित परिमंडल को भरपूर कर दिया
उसने वहन किया अपने अन्दर सावित्री के अपूर्व सौन्दर्य से उत्पन्न
झकझोर देने वाले चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य मुख को
एक अनजाने फूल समान मुखड़े के माधुर्य से वशीभूत होकर
उस ललाट के चारों ओर खुलते आत्मा-अन्तरिक्ष की ओर खिचां
वह बढ़ा उस स्वप्नदर्शन की ओर, जैसे समुद्र उठता है,
चन्द्रमा की ओर।

उसे एक मधुर पीड़ा की अनुभूति हुई जो हृदय के परिवर्तन से
उपजी थी

भौतिक वस्तुओं में भी उसने एक अनोखी दिव्यता का किया स्पर्श उसकी आत्माकेन्द्रित प्रकृति ऐसे धराशायी हो गई
जैसे किसी अग्नि में डाल दी गई हो

और उसका जीवन किसी दूसरे के जीवन में हो गया विसर्जित।

(पर्व 5, सर्ग 2, पृष्ठ 306)

और अब इन पक्तियों को भी सुनिये जब सावित्री सत्यवान को अपने परिणय का हार पहनाती है और भक्तिभाव से
झुककर उसके पाँव छूती है, तब सत्यवान उसे अपने आलिंगन में ले लेता है-

उसने सावित्री को अपने आलिंगन में समेट लिया

उसके चारों ओर उसका आलिंगन एक चिह्न बन गया

मंथर अन्तरंग चिरकाल पर्यन्त एक प्रगाढ़ सान्निध्य का

बन गया आगामी आनन्द का प्रथम मधुर सारांश

सकल दीर्घ जीवन की एक भावप्रण संक्षिप्तता।

दो आत्माओं के मिलन के उस प्रथम मधुर क्षण में

सावित्री ने अपनी सत्ता को सत्यवान में प्रवाहित होने दिया

उसने अनुभव किया मानो वह लहरों में बह रही हो जैसे एक नदी विशाल समुद्र में अपने को विसर्जित कर देती हैं

सदा उसमें ही समायी रहती और सामीप्य के आनन्द को पाती है। उसकी चेतना सत्यवान में डूबकर उसी की तरंग
बन गई,

उसका द्वैत, उसकी पृथकता सत्यवान में विसर्जित हो गई,

जैसे दोनों के लिए बाहरी जगत कहीं लुप्त हो गया,

सत्यवान को सावित्री के बाहुबंधन की पूर्ण प्रतीत थी

और उसने उसे व्याप्त हो जाने दिया “सम्पूर्णतः” अपनी आत्मा की

गहराइयों तक
जैसे कि एक विश्व भर उठा हो दूसरे विश्व की प्राण सत्ता से
जैसे ससीम जगत असीम मे से जाग उठता है
जैसे कि ससीम “अनन्त” की ओर खुल जाता है
ऐसे ही वे दोनों कुछ क्षणों के लिए एक दुसरो में समा गये
और तब फिर सुख की अपनी उस लम्बी मूर्च्छना से जगकर
वे एक नये अन्तरात्मा और नये विश्व में आ गये
मानों उनके लिए सम्पूर्ण सृष्टि जगत ही बदल गया था
अब वे एक-दूसरे का अभिन्न अंश बन चुके थे।

(पर्व 4, सर्ग 3, पृष्ठ 410
)

अब हम पर्व छः पर आते हैं जिसे “ भाग्य का पर्व” नाम दिया गया है। इसमें दो सर्ग हैं- पहला सर्ग मानव- जीवन में अनवरत चल रहे इस नाटक पर बड़े कुशल ढंग से प्रकाश डालता है और दूसरा सर्ग आस्तिकतावाद के दर्शनों की सर्वाधिक कठिन समस्याओं में से एक समस्या-मानव जीवन में दुःख और अशुभ की समस्या-पर गहन दृष्टि से विचार करता और उसका विश्लेषण करता है।

नवपरिणिता सावित्री अब शीघ्र ही अपने पिता के पास लौटती है और उन्हें सूचित करती है कि उसकी यात्रा का उद्देश्य पूरा हुआ है। देवर्षि नारद उस समय अश्वपति से भेंट करने के लिए वहाँ आये हुए हैं। सावित्री कहती है-

मेरे पिता, द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से मैं मिली हूँ
गहन अरण्य के एकान्त स्थान पर
और मैंने उसे वरण कर लिया है, यह निश्चित है।

(पर्व 6, सर्ग 1, पृष्ठ 424)

सत्यवान का नाम सुनते ही अश्वपति सहसा अपनी अन्तर्दृष्टि से एक काली छाया को गुजरते हुए देखते हैं लेकिन फिर वे यह देखकर आश्वासित हो जाते हैं कि उस छाया के पीछे एक अप्रत्याशित, अलौकिक प्रकाश जा रहा है। वे सावित्री को उसके चयन के प्रति अपनी स्वीकृति दे देते हैं। देवर्षि और अश्वपति के बीच हो रहा वार्तालाप सावित्री की माता को एक आशंका के अहसास से भर देता है। उसे सावित्री का सत्यवान को वरण करने का निर्णय सहज और सुखद प्रतीत नहीं हो रहा है। ये लोग उससे कुछ छुपा रहें हैं जो अप्रिय है। वह नारद से, जो भविष्य दर्शन की क्षमता रखते हैं, सब कुछ सही-सही बता देने का अनुरोध एवं प्रार्थना करती है। नारद सत्यवान के विषय में पूर्ण आशान्वित है। उसे वे पृथ्वी

और स्वर्ग को मिलाने वाला एक करिश्मा मानते हैं, लेकिन साथ ही कहते हैं-

आया है स्वर्ग का वैभव भू पर, लेकिन अति महान यह टिक न सकेगा

द्रुतपंखी बारह माह मिले है इन दोनों को

इस दिन के वापस आते ही, सत्यवान की मृत्यु है विधि- निश्चित।

देवर्षि की यह भविष्यवाणी सुनकर कि सत्यवान एक वर्ष बाद आज के ही दिन मृत्यु को प्राप्त होगा, सावित्री की माता अत्यन्त अधीर हो उठती है और सावित्री से आग्रह करती है कि वह दूसरी बार फिर जाये और अपने लिए कोई दूसरा वर चुने। लेकिन सावित्री अपने निर्णय में अटल है और माँ के आग्रह को मानने से इन्कार कर देती है। जिन शब्दों में वह अपने भाग्य को ललकारती है उनमें उसकी दृढ़ आत्मशक्ति का हमें पहली बार परिचय मिलता है-

“मेरे हृदय ने जिसे एक बार कर लिया वरण, वह नहीं करेगा चयन दूसरा

जो “शब्द” मैंने बोल दिया वह नहीं मिटाया जा सकेगा

वह भगवान की पुस्तक में है लिखा जा चुका.....

मेरे हृदय ने अपने सत्य को सत्यवान में कर दिया है विलय

मेरा विरोधी भाग्य भी नहीं मिटा सकता इसके हस्ताक्षर को,

उसकी मुहर को, न तो भाग्य, न मृत्यु, न काल पिघला सकता है

भाग्य मेरे साथ जो कर सकता है, करे

मैं मृत्यु से अधिक प्रबल हूँ और भाग्य से अधिक महान

सृष्टिपर्यन्त विद्यमान रहेगा मेरा प्रेम,

मेरी अमरता के समक्ष असहाय होकर दुर्भाग्य मुझसे दूर होगा।

यदि एक ही वर्ष है तो वही है मेरा जीवन

किन्तु मैं जानती हूँ कि जीना, प्रेम करना और मर जाना माल नहीं है मेरा भाग्य-विधान

मैं अवगत हूँ मेरी आत्मा क्यों आई है पृथ्वी पर,

और मैं कौन हूँ, और वह कौन है जिसे मैंने किया है प्यार

मैंने उसे अपनी अनश्वर आत्मा से अवलोका है

मैंने सत्यवान में प्रभु को अपनी ओर मुस्काते पाया है

मैंने मानवी मुख में देखा है “परम चैतन्य” को।

(पर्व 6, सर्ग 1, पृष्ठ 432, 435, 436)

असहाय और आकुल सावित्री की माता तब नारद की ओर मुड़कर अपने हृदय का आक्रोश प्रकट करती है। सावित्री ने ऐसा क्या किया जो उसे ऐसा अधम, क्रूर भाग्य मिला? ऐसा क्यों हुआ कि मेरी पुत्री की उस नवयुवक से भेंट हुई और वह उसके प्रेम में पड़ गई

जिसका माल बारह महीने का जीवन है? किसने यह भीषण दुःखमय जगत बनाया है जहाँ दुःख और सन्ताप अपनी परछाई हर वस्तु पर डालते रहते है? भगवान ऐसा निर्दयी जगत क्यों और कैसे बना सका

है? यह भगवान ही है या कोई दूसरी शक्ति जिसे भगवान नियन्त्रित करने में अक्षम है? कैसे भगवान संसार के अनिष्टों, यातनाओं और सन्तापों के प्रति इतने उदासीन और हृदयहीन हो सकते हैं?

नारद बहुत धीरजपूर्वक उसकी बातें सुनते है और फिर समझाते है कि दुःख का वास्तविक स्वभाव क्या है और भौतिक स्तर की योजना में उसकी भूमिका और स्थान क्या है।

मनुष्य अज्ञान से जकड़ा हुआ होने के कारण अपनी पीठ भगवान की ओर से फेर लेता है। उसे अज्ञान से जगाना ही होगा। दुःख और क्लेश अचेतना से उपजे हैं और अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वे मनुष्य के प्रमाद और अवरोध को तोड़ते हैं। नारद के इन शब्दों को ध्यान से सुनिये-

दुःख देवों का हथौड़ा है जो तोड़ देता है

स्थूल हृदय के निष्क्रिय अवरोध को

उसके प्रमाद की तन्द्रा एक जीवन्त पाषाण की तरह है

यदि हृदय न हो पाता बेबस कामना और रुदन से

उसका अन्तरात्मा पड़ा रहता निष्क्रिय स्वतः सुखाय की मुद्रा में

और कभी न विचारता आगे विकास करना,

और कभी न सीखता सूर्य की ओर उठना।

दुःख “प्रकृति माता” का हाथ है, जो अनवरत गढ़ता है मनुष्य को

उत्कृष्ट रूप देने हेतु, वह प्रेरणाप्रद एक श्रम है

जो दैवी निष्ठुरता से छैनी द्वारा करता है टंकन एक अनिच्छुक ढाँचे में

यद्यपि इन मानव शिल्पी देवों का भीषण स्पर्श

असहनीय कष्टप्रद है स्थूल विकसित शरीरी नस-नाड़ियों के लिए

पर वह ज्योतिर्मय आत्मा विकसित होती है आन्तरिक शक्ति में

और अनुभव करती है एक प्रबल आनन्द हर भीषण आघात से।

(पर्व 6, सर्ग, पृष्ठ 443, 444)

नारद सावित्री की माता को बताते है कि विकास-क्रम की वर्तमान अवस्था में दुःख और पीड़ा की आवश्यकता है, उन्हें हमारे सदस्वरूप को अनगढ़ पाषाण से छेदकर निकालना है जिसमें वह अचल पड़ा है। एक दिन ऐसा आ सकता है जब इस कष्टदायक देह-यन्त्र की जरूरत ही न पड़े। नारद फिर आगे उसे बताते हैं कि वे लोग भी जो संसार को बचाने हेतु आये, उन्हें भी उन कष्टों का भागीदार बनाना पड़ा है, इसके क्रॉस को वहन करना पड़ा है। इस जगत के त्राण हेतु भगवान के दूत को अशुभ और दुःख के मूल तक उतरना पड़ा है और फिर उसे शुभ और आनन्द में रुपान्तर करना पड़ा

है। ये ही उनके अवतरण का गौरव और महिमा है-

जब प्रभु का कोई सन्देश-वाहक आता है संसार की सहायता हेतु
और धरा-चेतना को उच्च तत्वों की ओर उठाता है
उसे भी, अप्रभावित रहकर पृथ्वी के भाग्य से
उस जुए को वहन करना है जिसे वह उतारने आया है
उसे भी झेलनी है वे पीड़ाएँ जिनका उसे करना है निवारण।
कैसे करेगा वह उपचार उन व्याधियों का जिनको उसने स्वयं नहीं झेला?
समस्त प्राणियों का दुःख आयेगा उसके पास
खटखटायेगा उसके द्वार और उसी के अन्दर करेगा निवास।
सदियों का रुदन उसकी आँखों में आवागमन करता है
संसार का विष उसके कंठ को धब्बों से भर देता है
वह मरता है ताकि विश्व नवजन्म पा सके और जी सके
बहुत दुष्कर है जग-परिताता का भारी कार्य
यह संसार अपने अज्ञान से प्रेम करता है
इसका अन्धकार प्रकाश से मुँह मोड़ता है
यह ताज के बदले में उस क्रॉस पर चढ़ाता है।

(पर्व 6, सर्ग 2, पृष्ठ 446,447)

यह सब सुनकर राजा अश्वपति देवर्षि नारद से पूछते हैं कि क्या सावित्री के पास संसार के इन दुःखों और क्लेशों का कोई समाधान है और क्या अपने ही भाग्य के दुःख का उसके पास कोई समाधान है और क्या अपने ही भाग्य के दुःख का उसके पास कोई उत्तर है? नारद जवाब देते हैं, “हाँ, है वास्तव में हैं क्योंकि सावित्री में एक ऐसी महानता है जो उसे स्वयं को और जगत को रुपान्तरित कर सकती है।” नारद सावित्री की माता से यह विनती करते हैं कि वह सावित्री और उसके भाग्य-विधान के बीच बाधा न बने। वे सावित्री के माता-पिता को आश्वासन देते हैं कि सावित्री अपने भाग्य से अधिक बलवान है। नारद के आश्वासनयुक्त इन शब्दों को सुनिये-

जैसे एक एकाकी सितारा आकाश में घूमता है
उसकी असीम व्यापकता से अविस्मित अप्रभावित
अपने ही आलोक में अनन्त काल तक करता है भ्रमण,
ऐसे ही जो महान हैं, वे अकेले होकर है अधिक बलवान.....
एक दिन ऐसा आ सकता है जब वह नितान्त निरावलम्ब खड़ी होगी
अपने और जगत के विनाश के एक खतरनाक मुहाने पर
वहन करती हुई जगत के भविष्य को अपने एकाकी सीने पर।

मनुष्य की आशा को अपने निःसंग हृदय में धरकर
वह विजित होगी या परास्त, निराशा की उस एक अन्तिम कगार पर.....
वह देवों से नहीं करेगी आर्त पुकार,
क्योंकि एकमात्र वही है स्वयं जगत की रक्षक,
इसी कार्य हेतु एक नीरव महाशक्ति, व्रत धारण कर नीचे उतरी
उसी के रूप में चेतन "संकल्प" ने मानवी आकार किया धारण
वही एक मात्र रक्षक है स्वयं की, और बचा सकती है विश्व को।

सावित्री एक संक्षिप्त परिचय

यह कभी न भूलना कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान तुम्हारे साथ हैं और तुम्हें मदद दे रहे हैं, मार्ग बता रहे हैं। वह एक ऐसे साथी हैं जो कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ते। वह एक ऐसे मिल हैं जिनका प्रेम आश्वासन प्रदान करता है, बल देता है। श्रद्धा बनाए रखो और तुम्हारे लिए वह सब कुछ कर देंगे।

श्रीमाँ

स्वर्णिम प्रकाश

श्रीअरविन्द

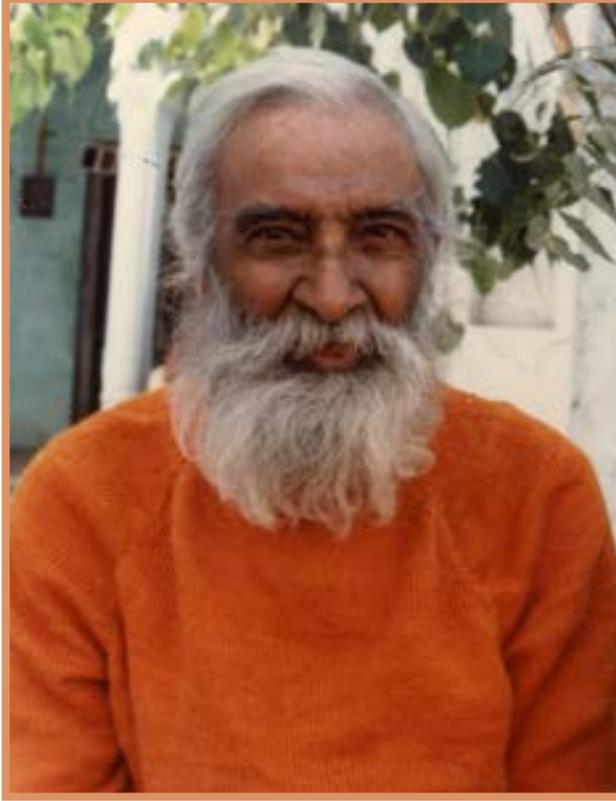
तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे मस्तिष्क में हुआ अवतरण
और मन के धुंधले कक्ष हो गये सूर्य-संस्पर्शित
प्रज्ञा के रहस्यमय तल के लिए एक ज्योतिर्मय उत्तरवचन,
एक शांत प्रबोधन और एक लौ दीपित ।
तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे कंठ में हुआ अवतरण,
और मेरी संपूर्ण वाणी है अब एक दिव्य धुन,
मेरा अकेला स्वर तेरा स्तुति-गान;
अमर्त्य के मधु से उन्मत्त हैं मेरे वचन ।
तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे हृदय में हुआ अवतरण,
तेरी शाश्वतता से हो गया आक्रान्त मेरा जीवन;
अब यह बन गया है तुझसे अधिष्ठित एक देवालय
और इसके सब भावावेगों का केवल तू एक लक्ष्य ।
तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे पैरों में हुआ अवतरण:
मेरी धरा है अब तेरी लीलास्थली और तेरा अधिष्ठान ।

सॉनेट

(अनु.-अमृता भारती)

पूर्णयोग का पथिक

अपर्णा रॉय



श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर जिनका ब्राह्म जीवन-परिचय कर्मठ और संघर्षशील, देशप्रेमी, साहसी, स्वन्त्रता संग्रामी, आदि-आदि शब्द श्रृंखला के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है किन्तु हम जिस परिचय की बात कर रहे हैं वह उनके भौतिक जीवन का रूपान्तरित स्वरूप है। श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर उर्फ चाचाजी (श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा में उन्हें चाचाजी कह कर सम्बोधित किया जाता है।) उस महान व्यक्तित्व का नाम है जिसने हमारे सम्मुख श्रीमाँ के प्रति पूर्ण समर्पण का ऐसा जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया, जो प्रमाण है इस बात का कि भौतिक जीवन के किसी भी रूप का परित्याग या पलायन किये बिना भागवत शक्ति के प्रति आस्था, विश्वास, और समर्पण द्वारा सामान्य भौतिक जीवन को दिव्य जीवन में रूपान्तरित किया जा सकता है।

आज हम चाचाजी के आरम्भिक जीवन के विस्तार

में नहीं जाकर केवल उनके उस जीवन का वर्णन कर रहे हैं जहाँ उन्होंने श्रीमाँ के रूप में साक्षात् भगवती का दर्शन ही नहीं किया बल्कि उनके अन्तर मन ने उन्हें पहचान भी लिया। चाचाजी का समर्पण श्रीमाँ के प्रति इतना गहरा था कि श्रीमाँ ने उन्हें पूरी तरह से अपना लिया। चाचाजी का जीवन हमें सिखाता है कि देना ही पाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

दिसम्बर 1939 की बात है, भारत-दर्शन के दौरान नियति उन्हें पांडिचेरी ले गई जहाँ पहली बार श्रीमाँ के दर्शन करते ही चाचाजी ने अपना हृदय खो दिया और उसी के द्वारा सब कुछ पा भी लिया। अब उनके जीवन का मार्ग और लक्ष्य निर्धारित हो गया, वे भगवान द्वारा चुन लिए गए।

उन्होंने अपनी आत्मा धन, संपत्ति, घर-बार-परिवार, देश की सेवा सभी कुछ सम्पूर्ण रूप से श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के चरणों में समर्पित कर दिया। यह समर्पण ऐसा था जिसके द्वारा उन्होंने सब कुछ पा लिया उनका दिल गा उठा---

तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मेरा...

12 फरवरी 1956 को श्री चाचाजी के द्वारा माँ को समर्पित गृह में विधिवत रूप से श्रीअरविन्द आश्रम की स्थापना हुई और धीरे-धीरे श्रीमाँ के कार्य को बढ़ाते हुए 23 अप्रैल 1956 को मातृ अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय (M.I.S) की स्थापना

हुई।

माँ ने संदेश भेजा-

“यह स्थान अपने नाम के अनुरूप बने तथा श्रीअरविन्द की शिक्षा व संदेश की सच्ची भावना को विश्व के समक्ष अभिव्यक्त करें।” और ऐसा ही हुआ। चाचाजी जीवन पर्यन्त श्री माँ के कार्य में जुटे रहे।

15 अगस्त 1959 को भव्य समारोह द्वारा राष्ट्रपति भवन में श्रीअरविन्द के तैल चित्र की स्थापना करवाई गई। यही नहीं, चाचाजी ने आश्रम से जुड़ी सड़क का नाम ही श्रीअरविन्द मार्ग करवा दिया और हँसते-हँसते कहा- ‘देखो मैंने हजारों लोगों को श्रीअरविन्द के मार्ग पर चला दिया!’

हँसते-हँसते कहा गया यह वाक्य श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की स्थापना द्वारा आज भावो की पूर्ण गहराई के द्वारा सत्य साबित हो रहा है। दिल्ली आश्रम श्रीमाँ के वचनानुसार पूर्ण सक्रियता से उनके कार्य के प्रति समर्पण भाव के प्रसार में लगा है। यह स्थान अधिक-से अधिक लोगों तक श्रीमाँ एवं श्रीअरविन्द के प्रकाश की शिक्षा अनुसार जीवन में रूपान्तर की प्रेरणा हेतु लोगों को जागरूक करने में कार्यरत है जिसके श्रेय स्वरूप चाचाजी उनके आदर्श यत्न बने यद्यपि जीवन के अन्तिम दशकों में वे अस्वस्थ रहे लेकिन उनके संकल्प की दृढ़ता में कोई कमी नहीं आई।

अपनी अन्तिम साँस तक वे निरंतर भागवत कार्य में लीन रहे।

2 सितम्बर 1986 को उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया और उनकी चेतना श्रीमाँ की चेतना में विलीन हो गई।

श्री माँ के प्रति चाचाजी का भाव ----

श्रीमाँ के साथ अपनी आत्मीयता की अभिवक्ति में चाचाजी का कहना था, मुझे श्रीमाँ ने लूट लिया। चाचाजी कहते हैं कि पहले उन्होंने मुझ पर काबू पाया और रिश्तेदार बन गईं, तब भी मैंने सबर किया कि जाने दो, परन्तु उन्होंने तो मुझ पर पूरा कब्जा ही कर लिया, यहाँ तक कि मेरी बीबी और बच्चों को भी मुझसे छीन लिया।

मेरे पास कुछ न छोड़ा। एक तरफ तो मुझे अपना गुलाम बना लिया और दूसरी तरफ मुझे इस कदर मुक्त कर दिया कि लगा जैसे सब कुछ मिल गया हो। कैसी अद्भुत कृपा थी चाचाजी के जीवन में श्रीमाँ की!

श्रीमाँ ने चाचाजी को समझाते हुए अतिमानव की व्याख्या की थी। उन्हें बताया कि कैसी होगी वह नई मनुष्य जाति। उन्होंने कहा -

“मनुष्य अगर ईश्वर की तरफ सच्ची निष्ठा के साथ एक कदम बढ़ता है तो भगवान आगे बढ़ कर उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को अपने आलिंगन में भर लेते हैं।

माँ कहती थीं - नाम का जाप करो सुबह और रात सोते समय। चाचाजी कहते हैं कि माँ से भेंट इतनी सहज होती थी कि वे उनसे मिलने जाने का कारण तक भूल जाते थे। चाचाजी अपनी हर समस्या और कठिनाई को उनके सामने निसंकोच रख देते थे और माँ उन्हें पूरी तरह से अश्वस्त भी कर देतीं, वे कहतीं, तुम्हारे जीवन का उद्देश्य देना, केवल देना है, किसी से कोई उम्मीद मत रखो, फिर धीरे से मुस्कुराती और कहतीं, मैं हूँ ना ! इससे बड़ा अश्वासन चाचाजी के लिए और क्या हो सकता था।

एक बार कि बात है -चाचाजी ने उनसे कहा, माँ मेरे पास एक रूपया भी नहीं है, मेरे पास लोग भी नहीं हैं, मैं अकेले

सब कुछ कर रहा हूँ, पता नहीं मैं ये सब कुछ क्यों कर रहा हूँ जबकि मैं इसके बिलकुल योग्य नहीं हूँ। असंभव से कार्य के आयोजन में? यह कह कर चाचाजी ने माँ के सामने कागजों का ढेर लगा दिया जिसमें उनके द्वारा बनाई और बिगड़ी योजनाओं का ढेर था। उन्होंने कहा मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि क्या करूँ, क्या ना करूँ, कैसे करूँ?

माँ ने कहा-मेरी भी यही अवस्था है, मेरे पास भी कोई धन नहीं है। यहाँ लोगों की सहायता नहीं है, यह कहते हुए वे उठीं और दूसरे कमरे की ओर बढ़ीं, मुझे भी आने का संकेत किया, देखा, वहाँ योजनाओं का ढेर लगा था, उससे भी अधिक मात्रा में, जो मैं लाया था। माँ उसके बाद बैठ गई और मैं भी उनके सामने ही बैठ गया। तुम चिन्ता क्यों करते हो, ये सब योजनाएँ प्रभु के कार्य के लिए हैं और यदि प्रभु चाहेंगे तो उनका कार्य हो कर रहेगा, अन्यथा नहीं होगा।

चाचाजी को माँ के इन शब्दों से सांत्वना मिली कि वे और माँ एक ही नाव पे सवार हैं।

श्रीमाँ ने पुनः आश्वसन दिया, मैं दिल्ली आश्रम में यहाँ से अधिक उपस्थित हूँ। आशा है तुम मेरी उपस्थिति को अनुभव करते होगे। दिल्ली आश्रम मेरे लिए अधिक महत्वपूर्ण है, मुझे आशा है कि दिल्ली आश्रम के माध्यम से श्रीअरविन्द का बहुत कार्य होगा।

चाचाजी को श्रीमाँ की निकटता और कितना अपनत्व प्राप्त था, उनकी निष्ठा और समर्पण के प्रति श्रीमाँ का विश्वास उनके द्वारा की गई चाचाजी की सराहना से ज्ञात होता है, देखें-

“अद्भुत! बहुत अच्छा, देखो तुम दिल्ली में बहुत सराहनीय कार्य कर रहे हो। तुम एकमात्र ऐसे व्यक्ति हो जिसने कुछ निर्माण किया है। (कुछ रचनात्मक किया है) मैंने कई लोगों से इसकी चर्चा की है।” वे आगे कहती हैं-

‘तुम्हारी नियति है देना- किसी से किसी प्रकार की आशा या अपेक्षा मत रखो।

तुम बहुत अच्छी तरह काम कर रहे हो, करते रहो, किसी मनुष्य की सराहना की इच्छा मत रखो, मनुष्यों में इतनी उदारता नहीं होती। एक बार चाचाजी ने माँ से पूछा था, माँ ! इन लिए कठिनाइयों के लिए बल कहाँ से पाऊँ-माँ ने कहा-‘अपने अन्दर से, अभीप्सा करो।

चाचाजी ने कहा, मैं जो भी करता हूँ, मुझे स्पष्ट दिखता है कि वह मैं नहीं करता बल्कि किसी अन्य शक्ति द्वारा किया जाता है, मुझे आपकी उपस्थिति स्पष्ट महसूस होती है।

आश्रम के कार्यों को करते समय चाचाजी को धन की कठिनाई का सामना करना पड़ता। उन्होंने धन-संग्रह हेतु लोगों से दान माँगना शुरू किया, जिसके लिए रसीद पुस्तिकाएँ छपवाई गईं। जब उन्होंने इस बारे में श्रीमाँ को बताया तब चाचाजी को उनका संदेश मिला- सुरेन्द्रनाथ से कहो कि अपनी बेवकूफी भरे तरीकों का त्याग करे। मैं नहीं चाहती कि मेरे बच्चे धन की भीख माँगें।

एक बार ऑरोविल में श्रीमाँ के बढ़ते कार्य से प्रभावित होकर चाचाजी के मन में वहाँ के प्रति आकर्षण जगा, उन्होंने श्रीमाँ से पूछा, माँ क्या मैं भी यहाँ जमीन का एक टुकड़ा (प्लॉट) खरीद लूँ?

माँ ने कहा उसकी कोई जरूरत नहीं। फिर बड़े प्रेम से समझाया-‘ तुम पहले से ही मेरे साथ मुझ में समाए हो, तुम्हें किसी अन्य स्थान की क्या आवश्यकता है? अपने जीवन में चाचाजी ने जो कुछ भी पाया उसका निस्कर्ष यही था-

सब कुछ आशीर्वाद है!

आश्रम गतिविधियाँ-2020

2 सितम्बर

2 सितम्बर को हमारे पूज्य चाचाजी की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में हवन का आयोजन किया गया, जिसकी शुरूआत प्रातः काल 8:00 बजे मंत्रों उच्चार के साथ कि गई। जिसमें आश्रम के सभी सदस्य उपस्थित हुए। हवन समाप्त होने के पश्चात प्रसाद वितरण किया गया। तथा संध्या समय ध्यान कक्ष में मीराम्बिका के छात्राओं द्वारा संगीत का आयोजन किया है।



2 अक्टूबर

2 अक्टूबर गाँधी-जयंति के अवसर पर आश्रम के सभी शिक्षार्थियों ने मिलकर प्रातःकाल 6:30 am से 8:00 am बजे तक श्रमदान किया, इसके बाद दोपहर में डॉ.सुरेन्द्र कटोच के द्वारा सभी शिक्षार्थियों के लिए कार्यशाला [workshop] सम्पन्न की गयी।



रविवार सत्संग (Sunday Satsang)

आश्रम में प्रत्येक रविवार को होने वाले सत्संग का पुनरारंभ हर्ष पूर्ण सूचना है, जिसमें आश्रम तथा आश्रम से बाहर के श्रद्धालुओं के आगमन की भी सुरक्षित व्यवस्था की गई जिससे सभी के हृदयों में प्रसन्नता छा गई। इस सत्संग में प्रत्येक रविवार को सुविज्ञ वक्ताओं द्वारा श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की शिक्षाओं से संबंधित वार्ताओं का आयोजन किया जाता है।



युवाओं के लिए-

प्रत्येक सप्ताह गुरुवार तथा शनिवार को आश्रम युवा वर्ग के लिए प्रेरक वार्ताओं का आयोजन किया जाता है, जिसमें क्रमशः डॉ.अपर्णा रॉय एवं डॉ.रमेश बिजलानी द्वारा आश्रम के युवा वर्ग को श्रीमाँ-श्रीअरविन्द की शिक्षाओं तथा सिद्धान्तों से अवगत कराया जाता है।



साप्ताहिक हिन्दी वार्ता-[on line talks]

श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा द्वारा प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक हिन्दी वार्ता [on line] का सीधा प्रसारण किया जा रहा है, जिसमें सुविज्ञ वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत वार्ताओं से सभी इच्छुक जिज्ञासु लाभान्वित हो सकते हैं।



स्मृतियाँ-

28 अक्टूबर इन्दु दीदी की जन्म-तिथि के अवसर पर आश्रम परिवार ने ध्यान-कक्ष में भक्ति-संगीत द्वारा उनका स्मरण किया। ध्यान के पश्चात प्रसाद वितरण किया गया। उनकी स्नेहिल छवि हमारे हृदय में सदा सथापित रहेगी। इन्दु दीदी! आपको सादर नमन!

